International Journal of Applied Research 2018; 4(4): 445-446

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(4): 445-446
www.allresearchjournal.com
Received: 12-02-2018
Accepted: 17-03-2018

अर्चना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अर्चना कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

भारतीय नारी की वर्तमान सुविचारित धारणा

अर्चना कुमारी

सारांश
भारतीय नारी की पहचान कई वर्ग समूहों, विभिन्न जाति समूहों, धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के रूप में होती है। इतना ही नहीं ग्रामीण और शहरी नारियों की भी पहचान अलग–अलग है। उदाहरणस्वरूप उच्च वर्ग की नारी, पिछड़ी जाति की महिलाएँ, अनुसूचित जाति एवं जनजाति की स्त्रियाँ इत्यादि। इसी प्रकार आर्थिक और सामाजिक स्तर, सम्पत्ति का अधिकार परिवार में स्थिति इत्यादि इस बात पर निर्भर करता है कि हम किस वर्ग की ब्राह्मण या अनुसूचित जाति की अथवा हिन्दू, मुस्लिम या ईसाई सम्प्रदाय की महिला की बात कर रहे हैं।

मुख्य शब्द : भारतीय नारी की पहचान, विभिन्न जाति समूहों, धार्मिक और सांस्कृतिक, ग्रामीण और शहरी

प्रस्तावना:
भारतीय नारी की स्थिति को प्रभावित करने वाले कारक है उनकी राजनीतिक भागीदारी, आर्थिक प्रगति और सामाजिक आदर्श। समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण तथा मापदण्ड भी नारी की स्थिति को प्रभावित करते हैं। एक लड़की से यह अपेक्षा की जाती है कि वह संकुचित, मुँह बन्द रखने वाली, लज्जाशील, सहनशील एवं कभी कुछ न माँगने वाली हो। जैसे ही लड़की रजस्वला को प्राप्त होती है, उसका लड़कों से मिलना – जुलना बन्द कर दिया जाता है। उसे सिर झुका कर धीरे–धीरे बोलने को कहा जाता है। उसकी जितनी जल्दी से जल्दी शादी कर दी जाए उतना अच्छा माना जाता है। शादी के बाद उससे ऐसी अपेक्षा की जाती है, जो स्त्री सुलभ हों। इसलिए सीमोन दि बोआ का कथन सत्य प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ पैदा नहीं होती बना दी जाती है। आमतौर पर भारतीय संस्कृति की तारीफ करते हुए कहा जाता है कि भारतीय समाज में स्त्री शक्ति रूप है। उसकी पूजा करनी चाहिए। उसका आदर करना चाहिए। मनु ने कहा है कि जहाँ नारियाँ रहती है वहाँ ईश्वर का वास होता है। हमारे आगे देवताओं के आगे देवियों का नाम लिया जाता है– पार्वती–शिव, सीता–राम, राधा–कृष्ण, लक्ष्मी–विष्णु इत्यादि। किन्तु वस्तुस्थिति बिलकुल भिन्न है।
भारतीय समाज में नारी का वर्गीकरण शूद्र की तरह ही हुआ है। ब्राह्मण स्त्री– 'क्षत्रीय स्त्री' 'वैश्य स्त्री' तथा दलित आदि स्त्री इसका सीधा सा अर्थ है कि भले ही समाज में शूद्र पुरुष की स्थिति निम्नतर हो लेकिन उसकी स्त्री तो उससे भी या सबसे निचले पायदान पर खड़ी होती है।
मनु स्त्रियों की स्वतंत्रता के पक्षधर नहीं थे। उनके अनुसार स्त्रियाँ अपनी सुरक्षा नहीं कर पाती इसलिए जन्म तथा मृत्यु तक उसे पुरुषों के संरक्षण में रहना चाहिए। वे पति, पिता और पुत्र के संरक्षण में रहती है। स्त्रियों को अबला, कहा गया है किन्तु स्त्रियाँ घर के भीतर और बाहर 12 से 14 घंटे खटती रहती है। जलावन के लिए जंगलों से लकड़ियाँ लाना, मीलों पैदल चलकर पानी लाना, मजदूरी करना, खाना पकाना और बच्चों की देखभाल करना। कुल मिलाकर उसका परिश्रम लगातार चलता रहता है[1]
स्त्री पर यह आरोपित किया जाता है कि वह पुरुषों की कमाई पर पलती है। लेकिन यह बात सही नहीं है। उसके घरेलू काम–काज को देखा जाए तो वे एक अवैतनिक मजदूर की तरह रात–दिन खटती रहती है। इतना ही नहीं यह भी देखा गया है कि भारत में लगभग 10 प्रतिशत घरों में महिलाएँ रोजगार करती है और पूरे परिवार का भरण–पोषण उसके कंधों पर होता है। स्त्री पर यह भी आरोप है कि वह पूरूषों को 'काम' के प्रति आकर्षित करती हैं। भड़कीले वस्त्र पहनकर अंग प्रदर्शन करना, पुरुषों में सेक्स के प्रति रूचि पैदा करना इत्यादि। चरित्रहीनता का आरोप भी उस पर मढ़ा जाता है किन्तु दुर्भाग्यवश 'बलात्कार के जो मामले आते हैं उससे यह बातें सच नहीं साबित होती हैं। सात वर्ष की लड़की के साथ बलात्कार किया जाता है। 60 वर्ष की महिला के साथ भी जबरदस्ती की जाती है। घरेलू हिंसा दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं।[2]

19वीं सदी में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, ज्योतिबा फूले और रानाडे इत्यादि समाज सुधारकों ने सती प्रथा, विधवा–विवाह और स्त्री शिक्षा को लेकर आंदोलन चलाया। ब्रिटिश सरकार ने भी कानून बनाए। किन्तु 'स्त्री की स्थिति में बहुत अधिक फर्क नहीं आया। जाति प्रथा के साथ–साथ स्त्रियों के प्रति भेदभाव जारी रहा।'[3]

आजादी के पश्चात् संविधान में सभी नागरिकों को जाति और लिंग के भेदभाव के बिना समान अधिकार प्रदान किए गए। समानता, स्वाधीनता, (विचार और विश्वास) और न्याय का अधिकार प्राप्त हुआ किन्तु सुधार की जो अपेक्षा की गई थी वह पूरी नहीं हो सकी। 1974 में 'नारी की स्थिति' को लेकर 'समिति' की जो रिपोर्ट आई, उसने हमारे इस भ्रम को तोड़ दिया कि आजादी के पश्चात् संवैधानिक सुरक्षा और न्यायिक समानता प्राप्त होने से नारी की दशा में गुणात्मक सुधार आयेगा। 'समाज में स्त्री को लेकर भेदभाव जारी रहा। 1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया। किन्तु भारतवर्ष में बाल–विवाह बलात्कार और महिलाओं का शोषण जारी रहा। बदतर स्थिति तो जाति प्रथा को लेकर नारी को झेलनी पड़ी।[4]

स्त्री शिक्षा को लेकर ज्योतिबा फूले, राममोहन राय और महात्मा गाँधी जैसे लोगों ने आजादी से पूर्व ही विशेष कार्य किया था। भारत में ईसाई मिशनरियों को भी श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने आदिवासियों के बीच न सिर्फ, शिक्षा का प्रचार किया वरन् बड़ी संख्या में आदिवासी महिलाओं के लिए स्कूल खोले और उन्हें शिक्षित बनाया किन्तु हमारी मध्यकालीन परम्परा और सोच स्त्री शिक्षा में रूकावट पैदा करने लगी। लड़कियाँ पढ़–लिखकर क्या करेंगी? उन्हें तो अंत में चूल्हा–चौका ही करना हैं, बच्चे पैदा करने हैं और परिवार की देखभाल करनी है। सास–ससुर की सेवा करनी है इत्यादि बातें कही जाने लगी। इसलिए हमारे यहाँ यह आशीर्वाद बड़े प्रेम से दिया जाता है कि 'दूधो नहाओ पूतों फलों। घर गृहस्थी सम्भालने के लिए चिट्ठी–पत्री तक पढ़ना, सिलाई–कढ़ाई करना, स्वादिष्ट खाना बनाना और बच्चों के लालन–पालन की शिक्षा ही स्त्री–शिक्षा समझी जाती थी।

20वी सदी के अंतिम दो दशको में उच्च और मध्यम वर्ग की स्त्री शिक्षा का प्रतिशत तेजी से बढ़ा परंतु निम्न वर्ग में यह बढ़ोत्तरी नही देखी गई। इसके कई कारण थे। सामाजिक और आर्थिक स्थिति की वजह से लड़कियों को स्कूल भेजना मुनासिब नहीं समझा गया। लड़कियों की सुरक्षा का डर, गाँव में विद्यालयों की दूरी एक वजह रही है। लड़कियाँ घरेलू काम में माँ का सहयोग देने, छोटे भाई–बहनों के पालन–पोषण में मदद करने के लिए घरों में रोक ली जाती और लड़कों को स्कूल भेज दिया जाता। आर्थिक तंगी की वजह से दूसरों के घरों में चौका–बरतन करने के लिए गरीब घरों से लड़कियाँ भेजी जाती रहीं जहाँ उनका शारीरिक शोषण भी होता रहा है। घरेलू नौकरानियों में से कुछ एक ने लड़कियों को पढ़ाना चाहा तो वे 10वीं कक्षा से आगे नहीं बढ़ पाई। ये लड़कियाँ घरेलू नौकरानियाँ नहीं कुछ दूसरे छोटे–मोटे काम करने लगी। इसलिए आज सबसे बड़ी समस्या हैं कि 'लड़कियों को स्कूल में कैसे टिकाए रखा जाए। आज भी गाँव में कम उम्र में ही लड़कियों की शादी कर दी जाती है।' इससे भी उनकी पढ़ाई में रूकावट पैदा होती है।[5] हमारे यहाँ जो पाठ्यक्रम बनाए गए हैं उनमें लड़कियों को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ भी नहीं होता है। महिला शिक्षकों की कमी भी इसकी एक वजह बतायी जाती है। इन सभी बातों के कारण स्त्री शिक्षा पर ड्राप आउट की समस्या बनी हुई है।

उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग में स्त्री शिक्षा को लेकर बेहतर रूझान देखने को मिले हैं। सुखद वैवाहिक जीवन की आशा में मध्यम वर्गीय लड़कियों को पढ़ाया जाने लगा है ताकि दहेज कम लगे और लड़की भी अपने पैरों पर खड़ी होकर गृहस्थी में मदद कर सके। कामकाजी लड़कियों की मांग विवाह के बाजार में बढ़ी है। फिर जब तक विवाह तय नहीं हो जाता तब तक शहर की लड़की क्या करें? दहेज की ऊँची रेट के कारण माँ–बाप एक तरफ लड़के तलाशते रहते है तो दूसरी तरफ लड़की को कॉलेज में भेजते रहते है। ताकि उसका मन भी लगा रहे, पढ़ाई भी जारी रहे। अपेक्षाकृत समाज–विज्ञान के विषयों में लड़कियों की संख्या बढ़ी हैं, जहाँ से नौकरी पाने की स्थिति बेहतर नहीं है। पिछले दिनों वाणिज्य पाठ्यक्रम के प्रति लड़कियों की रूझान बढ़ी हैं। 1950 के दशक में भूमण्डलीकरण के दौर में कॉल सेन्टर और कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी की स्थिति बेहतर होने के कारण बड़ी संख्या में मध्यवर्ग की लड़कियाँ मैनेजमेंट के स्कूलों से शिक्षा ग्रहण करके नौकरी प्राप्त की है किन्तु मैनेजमेंट के स्कूलों की बढ़ती फीश की वजह से निम्न मध्यम वर्ग के शहरी मां–बाप इन स्कूलों में अपनी बेटियों को प्रवेश दिला पाने में असमर्थ साबित हो रहे हैं।

निष्कर्ष

महिला स्वयं अपने नारी समाज की रक्षा हेतु सहयोगी भाव रखते हुये प्रेम, दया, वात्सल्य की देवी है। 'आज की प्रगतिशील शिक्षित नारी को स्वयं की अबलापन की बीमारी से निजात पाकर सबल बनकर संकोच से दूर हटकर अपने सपने बुनने होंगे, उन्हें साकार करना होगा'

संदर्भ–सूची –

1. 'स्त्री संघर्ष का इतिहास', विनोद शिंदे, पृ॰–242
2. वही
3. वही, पृ॰–120
4. 'स्त्री–शोषण', बी॰एल॰ दास, पृ॰–260
5. वही